विनोद कुमार श्रीवास्तव

कविताएँ

लौटते हुये

यह बीते और आने वाले
दिनो पर सब्र का समय है

एक पते की डोर पकड़े इस
विशाल शहर में हम
खोजने आये हैं अपने बच्चे

जब कि मन को होना चाहिये था पूरी तरह
निगाह के साथ
तमाम कोशिशों के बावजूद
याद आ रहे हैं
मां और पिता जी

दस्तख़्त करते समय
जब भी श्रीवास्तव लिखते पिता जी
ई की मात्रा की डंडी के निचले छोर पर
दोनो ओर एक एक बिंदी लगाते
कि जरा भी हिल न सके इधर उधर
लोग पहचान लेते थे
उनकी यह ख़ास छाप

जीवन में चारों ओर
उनके बच्चों और विद्यार्थियों के चेहरों पर
जगह जगह छपी हुई

सभी कहते हैं मैं तो
अपने हस्ताक्षर का भी क्या
पूरा श्रीवास्तव ही लिखता हूँ
पिता जी के श्रीवास्तव से लगभग मिलता हुआ

जिस दिन पिता जी
अपनी आखिरी किताब लिख चुकने के बाद
पूरी तरतीब दे रहे थे
पहले पन्ने से आखिरी पन्ने तक
एक एक नुक्ता
कील कांटे से दुरस्त करते हुये
वह छाप दिख रही थी
उस दिन भी बहुत साफ

महज़ आधे घंटे बाद
नहा धो कर
वे इस संसार से ही प्रस्थान कर गये
जैसे खत्म करता है अपना काम
एक चुस्त दुरुस्त आदमी
अपनी पूरी छाप छोड़ते हुये

एक बड़े से परिवार के लिये
सिंकी तमाम रोटियों में
पहचान ली जातीं
मां की सेंकी रोटियां
हर गोरी रोटी के बीच
भूरे और चिंता से भरे हुये
उनकी दो या तीन उंगलियों के निशानों से
सभी कहते उन्हें
मां के छापे वाली रोटियां
और वह छापा हमेशा दिखता
हम सबों पर

उठते बैठते बोलते और सोचते हुये
मां पिता जी द्वारा ही
दिये गये नामों के बावजूद
हम ज़्यादातर पहचाने गये
उन छापों के साथ
उनके बच्चों के ही नाम से

हम खोजने आये हैं
अपने बच्चे जब कि
हमें पता ही नहीं
किसी छाप के बारे में

यह बीते और आने वाले
दिनों पर सब्र का समय है

और हम लौट रहे हैं

यह बीते और आने वाले दिनों पर
सब्र का ही नहीं
प्रार्थना का समय भी है
* *

अपने शहर से वापसी

वे मुझे छोड़ने आये हैं स्टेशन तक
चेहरों पर एक जिज्ञासा सी लिये हुए

बहुत सारी जगहों पर भटकते
इच्छा थी बहुत दिनों से
अपने शहर आने की
ऐसा मैंने कहा था
यहां पहुंच कर मिलते हुये लोगों से
सचमुच बहुत दिनों बाद सुध ली
उन्होंने भी कहा हंसते हुए
कि ठीक से मिल तो लो
अब अपने शहर से
दुबारा हाल चाल लेने

वे आए और पूछा भी
कि मिल तो लिये होंगे
अपने इस शहर से

मैं बहुत सारी मिसालें देता रहा
शहर से खूब अच्छी पहचान का
उन्हें विश्वास दिलाते हुए
और वे हसंते हुए
वापस गए भी थे

अब जो मैं लौट रहा हूँ
तो फिर उन्हें चेहरों पर
दिख रही जिज्ञासा का क्या करूँ
इस समय क्या मैं उनसे कहूँ
कि प्रेम ही है मेरी इस
यात्रा की वजह जिसका लावा
घुमड़ता रहा मेरे होने में
जहां जहां मैं रहा इस यात्रा से पहले

या फिर मैं उनसे कहूं
कि प्रेम के साथ ही साथ
पूरा हुआ मेरा एक जरूरी काम
कि मेरी यह यात्रा मुक्ति पर्व भी थी
जिसमें चला आया मैं
बिना किसी इरादे या
तिथि पर विचार किये

या मैं चुप रहूँ
और फिर लौट कर लिख भेजूँ
कि शायद दुनियां में
ऐसी कोई जगह नहीं
जो सुंदर हो किसी दूसरी जगह से
या कि दुनियां में
ऐसी कोई सुंदर जगह नहीं
जो कि सुंदर लगे
बिना उससे प्रेम किये
* *

अंधेरा

सूचना बरस रही है
आंधी तूफान और बारिश की तरह

रोशनी इतनी
कि आंखें बंद हो जांय

अब नहीं बच रहे
जीवन में कोई रहस्य

कितना भयानक है
सब कुछ जान लेना

कि हत्यारे आते कहां से हैं
और फिर जाते कहां हैं

कि कितनी कम जगह बच रही
इस दुनियां में जीवन के लिए

कि उस जीवन में
कितनी कम जगह बची है विश्वास के लिये

तो क्या हम चुप हो जांय
चुप जैसे भयानक
* *

पवित्रता

दादी ने नहीं सुनी कभी सत्यनारायण की कथा
बाबा के जाने के बाद

ऐसा कभी नहीं हुआ कि बाबा
न शामिल हुए हों
दादी के साथ सत्यनारायण की कथा में
लेकिन हमेशा ऐसे कि
उठ कर चल देंगे कभी भी

हालांकि ऐसा कभी हुआ नहीं

बड़ी भव्यता दिखती
पंडित जी की कथा के समय
और कुछ वैसी ही
जब वे खाने बैठते

वे बाबा के हम उम्र थे
और शायद मित्र भी

पर बाबा को सारे पकवान
यदा कदा खिलाती दादी
कभी नही दिखी ऐसी दत्तचित्र
जैसी दिखती
पंडित जी को खिलाते समय

बाबा हमेशा कहते खाओ पंडित
पोंपा बजाओ और खाओ

पंडितजी ज्यादातर फल खाते
और मिठाइयां भी
नमकीन भी चखते
फलों और मिठाइयों की खपत बढ़ाने के लिये

लेकिन नमक रखवाते वे
हमेशा अलग से
कभी मिलाया जाता नहीं था
उनके पकवानों में
और उसे नमक नहीं
कहते वे रामरज थे

मुझे नमकीन बहुत पसंद था और
बचपन में रक्तचाप वैसा
बढ़ता भी नहीं था जैसा
देखा जा रहा है
मेरी उस उम्र के बच्चों में

मैं बड़ा हो रहा था
सवाल भी पूछता हुआ
पंडित जी खूब प्यार करते थे मुझसे
और बातें भी

उन्होंने समझाया था एकदिन
कभी पेट की भी सुनो बेटा
फल खाते समय कैसे पवित्रता का
एहसास होता है
वैसे होता है मिठाई से भी
लेकिन फल से कुछ कम ही

नमकीन के बारे में
उनका मन भारी होता
कहते जजमानों से
समझौता करना ही पड़ता है

यह हमेशा पवित्रता के
संकट का समय होता

शायद इसी तरह की
वजहों से ईर्दगिर्द
बनी हो
नमक खाने वाली कहावत

कवि कथाकार विनोद कुमार श्रीवास्तव के संग्रह संभावना प्रकाशन हापुड़ से प्रकाशित हैं। कम लिखते हैं, अंतराल भी होता है लेकिन अपने स्वतंत्र मिजाज से अलग पहचाने जाने वाले। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की जानी मानी हस्ती रहे और श्रेष्ठ विरासत के धनी। लम्बे समय तक भारतीय रेवन्यू सेवा में रहने के बाद अब सेवानिवृत्त। घर नहीं बना सके लेकिन नोएडा में रहते हैं। पहल के संपादन मंडल के प्रमुख सदस्य।

लीलाधर मंडलोई

सोलह छोटी कविताएँ

फूल

अस्थियों को कहा होगा जिसने
फूल

देखा होगा उसी ने
मनुष्य के भीतर
फूलों को

मैंने चुनी पिता की अस्थियाँ
मैंने भी कहा फूल

गूँगा

मैं गूँगा था
लेकिन
आलाप का गायक

मेरा गाना
किसी ने नहीं सुना

दोस्त

नहीं–नहीं
साँप के डसने से
नहीं हुई
यह देह नीली

कल रात मैं अपने दोस्त के साथ था

किलकारी

मैं उदास था
और संगीत सुन रहा था

छू नहीं रही थी
कोई भी बंदिश
मर्म को
किलकारी गूँजी नाती की
और मैं डूब गया

उसके बाद मुझे कुछ याद नहीं

रोटी

तुम्हारी अनुपस्थिति में
तुम्हारी तरह
बनाना चाहता हूँ एक रोटी

इतने दिनों के बाद भी
यह अधबनी है
यह दुक्ख भारी है आत्मा पर

चीख

नौकरी रेडियो की

सृष्टि की अनेक आवाजें
रिकार्ड की मैंने

दीवार पर छिपकली के
दौड़ने से
निकलती रही बेटी के
गले से जो चीख़
रिकार्ड नहीं कर पाया

चूका मैं हर बार

आवाज़

बिसिल की तीखी आवाज़
और 'जागते रहो' की पुकार

गूँजती है रात-भर

हम चौकीदार को नहीं
उसकी आवाज़ को पहचानते हैं

कासनी का फूल

बम-धमाकों के बीच
जब सब भाग रहे थे
श्रीनगर से अपने घर

छूट गया सब कुछ
बस चला आया मेरी स्मृति में
'कासनी का फूल'

सब कुछ ख़त्म नहीं हुआ

बोलने में

गोला-बारी के बाद
सन्नाटा था
एक अधजले दरख़्त पर
एक थी-'शीन चिरैया'

जिसके बोलने में
दरख़्त के रोने की
आवाज़ आ रही थी

याद

मेरा कोई खेत नहीं
मैं दोस्तों के खेतों में
करता था काम
जैसे माँ

फसल आने पर
मैं खेत से बाहर था

मैं खरपतवार

माँ की आप बीती मुझे याद आई

नुक़्ता

मेरी भाषा में
नुक़्ता नहीं

लिखता हूँ जब
बार-बार आते हैं
नुक़्ते वाले शब्द

मैं नहीं रहा उनकी सूची में
मैं हिन्दू नहीं हूँ

मैं भूल चुका

कितनी भी करूँ कोशिश
नींद नहीं आती

रहता हूँ चौकस ट्रक चलाते
घूमता है परिवार आँखों में

पहुँचने के बाद घर
आती है ऐसी नींद

कि भूल जाता हूँ सब
बच्चे तरसते हैं कहानी के लिए

कहानी से बस ट्रक है
दूरियाँ नापता हुआ

मैं भूल चुका
कहानियाँ कैसे सुनाई जाती हैं?

खून के निशान

इस शहर में हैं
डेयर डेविल्स
घूमते बाइकों पर
गति की सीमा मालूम नहीं उन्हें

सड़क पर मिलते हैं रोज़
खून के निशान

जिन्हें धोता है पुलिस वाला
और भूल जाता है

छुट्टियाँ

परिंदे भी
छुट्टियाँ मनाते हैं

लो साइबेरिया से
आ गये वे

भंग न करें उनकी शांति

अपनी छुट्टियाँ मनाने
कहीं ओर निकल जाएँ

कुप्पियाँ

डिबरी के पहले
कुप्पियाँ थीं
धुआँ था बहुत
और घासलेट की गंध

लेकिन रोशनी थी इतनी
कि लड़ा जा सकता था अँधेरों से

पाँचवी कक्षा तक
इसी के उजाले में
पूरा किया होमवर्क हम भाइयों ने

दोनों ने पढ़ाई पास की
दोनों ने अँधेरा पार किया

चीटियाँ

जैसे बनाती हैं सड़कें
पानी को पार करती हैं एकजुट

पहाड़ों पर चढ़ती हैं
युद्ध करती हैं सेना के साथ

अनाधिकार घुसने नहीं देती
किसी को अपने इलाक़ों में

कर सकती हैं चीटियाँ जैसा

कर सकते हैं हम भी
देखो अमरीका घुसा आ रहा है जबरन

लीलाधर मंडलोई सक्रिय रचनात्मकताओं वाले लोकप्रियता की तरफ बढ़ते हुए साहित्यकार हैं। मूल रूप से कवि लेकिन डायरी, संस्मरण और आलोचनात्मक विधाओं में भी अग्रसर। संपादन भी करते हैं और हस्तक्षेप भी करते हैं। एक प्रकार से सांस्कृतिक व्यक्तित्व वाले सुर्खीदार नागरिक। इधर छोटी कविताएं खूब लिखीं। जो दैनिक साप्ताहिकों से लेकर साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित। हाल में उनका एक लम्बा साक्षात्कार वसुधा में छपा है जो उनके सरल प्रतिबद्ध एवं मित्र मन को प्रकट करता है। लम्बे समय से आकाशवाणी और दूरदर्शन से सम्बद्ध लीलाधर मंडलोई छिंदवाड़ा जिले के एक गांव में पैदा हुए थे।

पुरखों के बीच (1998) के बाद

जितेन्द्र चौहान की नई काव्य कृति

टॉड से आवाज (2008)

सीमित प्रतियों में उपलब्ध

पार्वती प्रकाशन
73, ए. द्वारिका पुरी, इंदौर- 09 (म.प्र.)
मोबाइल : 0977032898

राकेश रंजन

कविताएँ

यातनागृह, कैदी और अभिनय

वह एक यातनागृह था
जिसके सारे कैदी
सामूहिक अभिनय कर रहे थे
एक दुखांतक नाटक में

सबकी अपनी-अपनी भूमिकाएँ थीं
एक राजा बना था, कुछेक मंत्री-संत्री
अनेकानेक सिपाही, सिपहसालार
विदूषक, संत, अधिकारी, कहार
कवि, कलाकार
मुजरिम, फरियादी, काजी, जल्लाद...

उनमें से ज्यादातर दर्शक बने थे
जो हर अदा, हर संवाद पर
हाथ उठा-उठाकर दे रहे थे दाद

वे सभी कैदी
अद्‌भुत अभिनेता थे सिद्ध
जिसका प्रमाण यह था
कि आपादमस्तक बेड़ियों से
जकड़े होने के बावजूद

तमाम अंग-संचालनों के दौरान
जरा भी खनकती नहीं थीं
उनकी बेड़ियाँ!

अद्‌भुत था उनका कौशल!
विद्रोह की भूमिका वाले कैदी
मुट्ठियाँ भाँज-भाँजकर
जताते थे विरोध
मगर उनके हाथों की बेड़ियाँ
रहती थीं बिलकुल खामोश!

कभी-कभार
दुर्भाग्य से
जब किसी की बेड़ियाँ खनक उठती थीं
तब उसे मरने का अभिनय
करना होता था
बाकी सब
उसे मारने का अभिनय करते थे
और दर्शक
यह कहने का अभिनय
कि खून, खून...

मोरपंख

उसे एक मोरपंख की जरूरत थी
वह अरसे से
दर-दर भटक रहा था
और उसे कहीं नहीं मिल रहा था
मोरपंख

हारकर वह ऊधो के पास गया
पूछा : कहाँ मिलेगा मोरपंख?

ऊधो बैठे थे दार्शनिक अंदाज में
बोले :
क्या मोरों के जीवन में बचे हैं मोरपंख?
क्या मोर बचे हैं आज?

क्या आज भी नाचते हैं वे
मेघों के स्वागत में पंख फैलाकर?
क्या अब भी आते हैं मेघ
वनों के जीवन में?
क्या अब भी कहीं जीवित हैं वन?

फिर जरा रुककर
उपदेशक की मुद्रा में बोले वे
दृढ़प्रतिज्ञ-भाव में :
इससे पहले
कि सुर्खाब का पर हो जाए मोरपंख
बिला जाए इतिहास के मृत विस्तार में
हमें खोजना होगा उसे
पाना होगा हर हाल में!

निराश होकर आखिरकार
वह माधो के पास गया
पूछा: कहाँ मिलेगा मोरपंख?

मोरपंख?
कहाँ है...
कहाँ है मेरा वह मोरपंख?
बेखुद-सा चीखे माधो
और बोले माथा पीटकर :
उसके बगैर
बहुत पिराता है मेरा माथा
काँटों का पहाड़ लगता है मुकुट
कहीं खो गई है मेरी वंशी
मैं भूल गया हूँ गोकुल की राह...

फिर याचना-भाव से
आँखों में लोर भरे बोले वे :
गिर गया था मेरे मुकुट से
जब मैंने युद्ध में उठाकर मुख
फूँका था शंख
कहाँ है वह मेरा मोरपंख?

माधो भहराकर
गिर पड़े बिलपते
धूसरतम ऊसर में
माथे पर उनके
नाचता रहा हन-हन
उनका ही चक्र!

भागा वह वहाँ से भयभीत
मोरपंख-मोरपंख चिल्लाता
सर्पों से घिरा हुआ
भागता रहा सर्पिल पथों पर...

और उधर
मोरपंख माथे पर सजाकर
गोकुल में वंशी
बजा रहे थे नाग!

गधी

अपनी असुंदर पीठ पर
गंदगी की गठरी
और तिरस्कार का उठाए अंबार
जा रही गधी
बेजान, डगमग टाँगों से
नदी की ओर

शिखर पर चढ़कर विकराल
ज्वाल-जाल बरसा रहा
वृष राशि का सूर्य

गधी गर्भवती है
कोलतार की बरक रही सड़क तक
लटका उसका पेट
पसीने से भीगी
झाग, मूत, आँसुओं से तर
जा रही वह
रस्ते पर खींचती जलरेख

जीवन में प्रथम बार
देख रहा मैं
किसी गधी की गहन काली आँखें
कविता में प्रथम बार
कर रहा दर्ज
उनका अनदेखा सौंदर्य

कवि की आँखों से
अब तक ओझल आँखोंवाली एक गधी
क्या सोचेगी
कविता की दुनिया में आकर?

कविता की दुनिया में
क्या ऐसी कोई छाँव है
जहाँ तनिक रुककर वह ले सके दम?
दमभर सुस्ता सके?

कविता के मधुवन के पुण्यप्राण मृग
क्या सोचेंगे
अपने बीच एक घृण्यप्राण गधी को पाकर?
कहाँ छिपेगी वह
बोझ-ध्वस्त कैसे कर भागेगी
जब उसे रगेदेगा
विमल सोंटा लेकर
कविता के मधुवन का धर्मनिष्ठ
कर्मठ रखवार?

कब पहुँचेगी वह
नदी के पास?
कब उतरेगी वह नदी की देह में?

उसे कैसा लगेगा
वहाँ पहुँचकर वह देखे अगर-
कभी कोई नदी
वहाँ थी ही नहीं?

पैंतीस वर्षीय राकेश रंजन मूलतः हाजीपुर, वैशाली के हैं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त राकेश अध्यापक हैं। 'कसौटी' में संपादन सहयोग किया और पहला कविता संग्रह 'अभी अभी जनमा है कवि' शीघ्र प्रकाश्य। पहल में पहली बार।